Indian J. Soc & Pol. 03(02): 2016: 85-90 **ISSN 2348-0084 (P)**
ISSN 2455-2127 (O)

भारतीय लोकतंत्र में सामाजिक न्याय की स्थापना : महिलाओं एवं अनुसूचित जातियों के सन्दर्भ में

अशोक कुमार सिंह चंदेल[1]
[1]एसोसिएट प्रोफेसर, के0 बी0 पी0 जी0 कॉलेज, मीरजापुर उ0प्र0,भारत

ABSTRACT

मानव सभ्यता के विकास के बाद से मनुष्य ने विभिन्न प्रकार की शासन प्रणालियों का अनुभव किया है जिनमें लोकतंत्र को सर्वाधिक बेहतर माना जाता है। लोकतंत्र एक ऐसी शासन प्रणाली है जिसमें शासन सत्ता का अंतिम सूत्र जनता के द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथ में होता है। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की लोकप्रियता का सबसे बड़ा आधार यह है कि यह मानवीय अधिकारों, स्वतंत्रता, समानता एवं सामाजिक न्याय पर बल देती है। लोकतंत्र के अंतर्गत समाज के सभी सदस्यों को अपने विकास का अवसर राज्य द्वरा उपलब्ध कराने पर बल दिया जाता है। जिसका उद्देश्य राजनीतिक निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में सभी वर्गो को उचित प्रतिनिधित्व दिलाना है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि जब किसी वर्ग को उसके अधिकार, स्वतंत्रता तथा अवसरों से वंचित रखा जाता है या उसे समाज में विद्यमान वे उन अवसर या स्थान प्राप्त नहीं होते, जो उसे प्राप्त होने चाहिये तो उस वर्ग द्वारा उन अधिकारों, स्वतंत्रता व अवसरों की प्राप्ति हेतु आन्दोलन किया जाता है। लोकतंत्र का आधुनिक रुप इसी प्रकार के आन्दोलन की उपज है।

KEYWORDS: *लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, वर्ग, अनुसूचित जाति,*

भारत में स्वाधीनता के बाद लोकतंत्र की स्थापना हुई। भारत में उदार लोकतंत्र के सभी लक्षण विद्यमान है। जैसे – एक से अधिक राजनीतिक दलों का अस्तित्व एवं उनमें राजनीतिक सत्ता हेतु खुली प्रतिस्पर्धा, राजनीतिक पद सभी के लिये खुले हुए हैं, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार पर आधारित समयावधिक चुनाव, नागरीकों को प्राप्त मौलिक अधिकार एवं स्वतंत्र तथा निष्पक्ष न्यायालय की व्यवस्था आदि।किसी भी देश में लोकतंत्र के सशक्तिकरण का रास्ता सामाजिक न्याय से होकर गुजरता है। यह मानी हुई बात है कि सामाजिक न्याय के समर्थन के बिना एक लोकतंत्र कभी भी वास्तविक लोकतंत्र नहीं बन सकता है।

भारतीय समाज एक पितृ प्रधान समाज है जिसके कारण सदियों सें भारतीय महिलाओं ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में असमान व्यवहार एवं उत्पीड़न का अनुभव किया है। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन के समय संतो ंके द्वारा महिलाओं के उत्थान का प्रश्न उठाया गया था परंतु दुर्भाग्यवश इसका समाज पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। भारतीय पुनर्जागरण काल में विभिन्न सुधारवादी संगठनों ने समाज में फैली स्त्री–पुरुष असमानता को चुनौती दी एवं अनेक सुधारात्मक प्रयास किये। आधुनिक भारत में राजा राम मोहन राय ने सर्वप्रथम महिलाओं के प्रति अन्याय के प्रश्न को व्यापक रुप में उठाया। उन्होनें सती प्रथा, बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा एवं वेश्यागमन इत्यादि समाजिक कुरीतियों का विरोध एवं विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया।

आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने जीवन काल में सर्वाधिक कार्य स्त्रियों की दशा सुधारने के लिये किया। पुनर्जागरण काल में किये गये प्रयासेां के चलते महिला शिक्षा में वृद्धि हुई और सीमित रुप मे महिलाओं ने सामाजिक जीवन में प्रवेश किया। महात्मा गांधी ने महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन पर विशेष ध्यान दिया क्योंकि स्त्री–पुरुष की समता सामाजिक समानता का अनिवार्य अंग है। गांधी जी चाहते थे कि राज्य महिलाओं को पुरुषों के समान स्तर प्रदान करने के लिये शिक्षा, रोजगार तथा विधानमंडलों में भाग लेने के अवसरों में पहल करे। गांधी ने मानवीय मुल्यों के रुप में स्त्री की गरिमा को स्वीकार कर स्त्री की स्वतंत्रता, समानता, अस्मिता तथा गरिमा की समाज मे प्रतिष्ठा के लिये भागीरथ प्रयास किया। भीमराव अम्बेडकर ने भी महिलाओं की स्थिति में सुधार को एक आवश्यक कार्य माना।

भारतीय समाज असमानता पर आधारित समाज है जिसमें महिलाएं, दलित एवं आदिवासी समुदाय हासिये पर स्थित है। 'दलित' उन व्यक्तियों को कहा जाता है जिनकी जातियों को भारतीय जाति सोपान में सबसे नीचे का स्थान दिया गया है। पहले वे अस्पृश्य के रुप मे जाने जाते थे क्योकि यह माना जाता था कि इन्हें छूने मात्र से व्यक्ति अपवित्र हो जाता है। इनके लिये औपचारिक नाम अनुसूचित जाति है क्योंकि यदि इनकी जाति सरकारी अनुसूची में सूचीबद्ध है तब जाति के सदस्य विभिन्न प्रकार के सकारात्मक कार्यवाही एवं संरक्षण का लाभ पाने के पात्र हो जाते है। भारत में दलित समुदाय सदियों से शोषित, उत्पीड़ित एवं वंचित रहा है। वर्तमान समय में भी यह विकास की राह पर बहुत पीछे है। वर्तमान भारत में हिंदू धर्म के अतिरिक्त बौद्ध, इसाई, सिक्ख एवं इस्लाम धर्म के मानने वालों में भी दलितों की एक बड़ी संख्या है यद्यपि इनकी सबसे बड़ी संख्या हिंदू धर्म को मानती है।

1: Corresponding Author

सामाजिक न्याय से यह अभिप्राय है कि सामाजिक जीवन में सभी मनुष्यों की गरिमा स्वीकार की जाय, साथ ही धर्म, जाति क्षेत्र, वंश, लिंग या त्वचा के रंग के आधार पर किसी भी व्यक्ति के साथ, किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो, शिक्षा एवं विकास के साथ, किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो, शिक्षा एवं विकास के अवसर प्रत्येक व्यक्ति को समान रुप से एवं आसानी से प्राप्त हो और मानव मात्र के रुप में उन्हें समाज की सभी सुविधाओं एवं साधनों का उपभोग करने का अधिकार प्राप्त हो। व्यापक अर्थ में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय, तीनों को ही सामाजिक न्याय के अंतर्गत स्वीकार किया जाता है।(पूरनमल,2002,100.105) इस प्रकार सामाजिक न्याय, सामाजिक नीतियों या विवादों के समाधान से सम्बधित वह दृष्टिकोण है जिसमें विभिन्न पक्षों के परस्पर विरोधी दावों का निर्णय करते समय निर्बल और निर्धन पक्ष को विशेष सहायता एवं संरक्षण प्रदान करने में तत्परता दिखाई जाती है जिससे उनकी दशा सुधारी जा सके और उन्हें सम्मानपूर्ण जीवन यापन का अवसर मिल सके। प्रस्तुत शोध पत्र में उपरोक्त विषय पर प्रकाश डाला जायेगा, साथ ही यह सिद्ध करने की चेष्टा की जायेगी कि संवैधानिक एवं न्यायिक प्रयासों के बावजूद भी आज की 21वीं सदी की भारतीय महिला को सामाजिक न्याय उपलब्ध नहीं है।

वर्तमान समय में सामाजिक न्याय शब्दावली बहुचर्चित हैं परंतु इस अवधारणा के विषय में कई अस्पष्टताएं है आमतौर पर इसका तात्पर्य समानता माना गया है। परंतु यह मात्र समानता नहीं है आधुनिक युग में यह औचित्यपूर्ण समाज की कल्पना करती है जिसमें सभी व्यक्तियों के साथ समान बर्ताव होता है। औचित्यपूर्ण समाज की आधारशिलाएं कई प्रकार की हो सकती हैं जैसे आध्यात्मिक का मिश्रण जो भी हो, यह न्याय की आधुनिक व्याख्या से सम्बधित है जैसा कि समकालीन उदारवादी चिंतक जांन राल्स की पुस्तक 'ए थ्योरी ऑफ जस्टिस' से स्पष्ट है। राल्स ने सामाजिक न्याय को अपेक्षित राज्य नीति के क्षेत्र में स्थित किया है सामाजिक न्याय को औचित्यपूर्णन्याय से जोड़ते हुए उन्होंने लिखा कि आर्थिक असमानता तभी सहनीय है जबकि यह निर्धनों के हित में है। इसलिये वस्तुओं, अवसरों और लाभो के वितरण में निर्बल, निर्धन और असहाय वर्गो के हितो का ध्यान रखना औचित्यपूर्ण समाज के निर्माण के लिये आवश्यक है। इस प्रकार कल्याणकारी नीतियों से सामाजिक न्याय की प्राप्ति हो सकती है।(राल्स,1971) जांन राल्स के विपरीत महात्मा गांधी ने सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिये राज्य और समाज दोनों को उत्तरदायी माना। यह उनके न्याय का सिद्धांत और सर्वोदय से स्पष्ट है।

इस प्रकार सामाजिक न्याय की अवधारणा एक आदर्श के समान है जिसके आधार पर यह निर्धारित किया जा सकता है कि सामाजिक व्यवहार, राजकीय नीतियों या परम्पराएं न्यायोचित है या नीहं यह एक बहुआयामी सिद्धांत है क्योंकि यह आर्थिक रुप से निर्बल, सामाजिक रुप से शोषित और उपेक्षित वर्ग को अपने दायरे में सम्मिलित करता है।

भारतीय संविधान के माध्यम से उन लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को संवैधानिक रुप दिया गया जिनका निर्माण स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हुआ और जिसके लिये स्वतंत्रता, समानता एवं सामाजिक न्याय प्रमुख थे जिन्हें, बिना भेदभाव के समस्त नागरिको को उपलब्ध कराना शासन का दायित्व बनाया गया। इसलिये संविधान में लैंगिक भेदभाव को अस्वीकार करते हुए स्त्री एवं पुरुष के मध्य पूर्ण समानता सुनिश्चित की गई है। मूल अधिकारों के अध्याय के अंतर्गत महिलाओं को पुरुषों के ही समान अधिकार मिले हुए हैं।

विधि के समक्ष स्त्री एवं पुरुष दोनों समान है और विधियों का संरक्षण उन्हें समान रुप से प्राप्त है।(कपूर एण्ड कासमा,2001,पृ197) इसी प्रकार लैगिंक अन्याय/भेदभाव को संविधान मे असंगत घोषित किया गया है। अनुच्छेद 15(3) के अनुसार राज्य महिलाअें को सामाजिक न्याय प्रदान करने की दृष्टि से उनके पक्ष में विशेष सकारात्मक कदम उठा सकता है। स्त्री एवं पुरुष दोनों को सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार के विषय में अवसर की समानता प्राप्त होगी अर्थात सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति के लिये राज्य लैंगिक आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा। 86 वां संशोधन 2002 द्वारा निर्मित अनुच्छेद 21 क में राज्य को निर्देश दिया गया है कि 6 –14 वर्ष आयु के समस्त बच्चों को राज्य निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध करायेगा। यहां बच्चों से तात्पर्य लड़कों एवं लड़कियों दोनों से है। महिलाओं के शारीरिक शोषण को रोकने हेतु मानव के अनैतिक व्यापार को दंडनीय अपराध बनाया गया है। भाग 3 में वर्णित मूल अधिकारों के इस वर्णन से पता चलता है कि महिलाओं को कानूनी स्तर पर पुरुषों के समान अधिकार एवं स्वतंत्रताए प्राप्त है।

लोकतांत्रिक मूल्यों को सुदृढ़ बनाने के लिये समाज क समावेशी विकास की आवश्यकता है। 11वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र से स्पष्ट है कि निर्वाचित संस्थाओं, राज्य विधानमण्डलों और संसद में महिलाओं का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना एवं समाज की बेसहारा व अकेली महिला को शरण एवं संरक्षण देना योजना के लक्ष्यों में रहेगा। निश्चय ही पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से महिलाओं को सामाजिक न्याय दिलाने के प्रयास किये गये, यह अलग बात है कि ये प्रयास आशानुकूल सफल नहीं रहे। महिला सशक्तिकरण की राष्ट्रीय नीति, 2001 के माध्यम से भारतीय महिलाओं को समान अधिकार, समान स्वतंत्रता एवं समान स्तर प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है जिससे वे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों मे पुरुषों के समान सुविधाओं का उपभोग करने में समर्थ हो सकें।(भारत,2007,पृ0962) महिलाओं को सामाजिक न्याय उपलब्ध कराने की दिशा मे यह नीति एक महत्वपूर्ण पहल करती हुई दिखाई पड़ती है। यदि वास्तविक रुप में इस नीति पर अमल हो तो भारत मे स्त्रियों की दशा में सकारात्मक एवं क्रांतिकारी परिवर्तन हो सकता है।

भारतीय संविधान समस्त नागरिकों को सामाजिक न्याय उपलब्ध कराने का वचन देता है और क्योंकि महिलाएं नागरिको के आधे भाग का प्रतिनिधित्व करती है तथा संविधान के लागू हुए आधी शताब्दी से अधिक का समय हो चुका है इसलिये यह आशा की जाती है कि उन्हें भी सामाजिक न्याय प्राप्त होगा। परंतु वास्तविक नागरिक जीवन में स्त्रियों को सामाजिक न्याय की उपलब्धता की स्थिति असंतोषजनक एवं निराशापूर्ण है। शिक्षा व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास एवं आर्थिक सुरक्षा की प्राप्ति का प्रमुख साधन है। परंतु शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं से भेदभाव अभी भी प्रचलित है जिसका दुष्प्रभाव उनके विकास पर पड़ रहा है। (देसाई एण्ड ठक्कर,2001पृ055) 2011 की जनगणना के अनुसार महिलाओं में साक्षरता दर केवल 65.46 प्रतिशत है।(कुशवाहा,2014पृ98)

प्रत्येक वर्ग/समूह की सामाजिक आर्थिक दशा, उनकी राजनीतिक दशा से अंर्तसंबंधित होती है। भारतीय समाज में महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति के मुख्य रुप से कमजोर होने का स्पष्ट प्रभाव उनकी राजनीतिक स्थिति पर पड़ रहा है। महिला सशक्तिकरण के विभिन्न दावों एवं नारों के बावजूद 21वीं सदी में भी भारतीय संसद में महिला सांसदों की संख्या बहुत ही कम है।

कम संख्या	वर्ष	महिला सांसदों की संख्या	महिला सांसदों का प्रतिशत
1	1952	22	4.50%
2	1957	22	4.45%
3	1962	31	6.28%
4	1967	29	5.58%
5	1971	28	5.41%
6	1977	19	3.51%
7	1980	28	5.29%
8	1984	43	7.95%
9	1989	29	5.48%
10	1991	39	7.30%
11	1996	40	7.37%
12	1998	43	7.92%
13	1999	49	9.02%
14	2004	45	8.29%
15	2009	59	10.37%
16	2014	66	12.15%

स्त्रोत – भारत निर्वाचन आयोग की विभिन्न रिपोर्टो पर आधारित।

प्रशासनिक क्षेत्र में भी महिलाओं की उपस्थिति बहुत अपर्याप्त है। न्यायिक पदों एवं सेवाओं में इनका प्रतिनिधित्व लगभग नगण्य है। राजनीतिक, प्रशासनिक एवं न्यायिक क्षेत्र में इनके अल्प प्रतिनिधित्व का दुष्प्रभाव इनकी सुरक्षा, कल्याण एवं विकास से संबंधित मुद्दों पर दिखाई देता है। महिलाओं की राजनीति में भागीदारी को बढ़ाने हेतु बहुचर्चित महिला आरक्षण विधेयक राजनीतिक दलों की मिली भगत की वजह से पारित नहीं हो पा रहा है इस विधेयक में लोकसभा एवं राज्य विधान सभाओ के सदस्यों के एक तिहाई पदों को महिलाओं के लिये आरक्षित किये जाने का प्रावधान है। वास्तव में, प्रमुख राजनीतिक दलों का नेतृत्व पुरुषों के हाथ में है और वे इस विधेयक के कानून बन जाने सें अपनी सत्ता एवं नेतृत्व को चुनौती मिलने का खतरा महसूस करते है। बिहार, राजस्थान इत्यादि कुछ राज्यों ने पंचायत पदो के लिये महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण देकर महिलाओं को राजनीतिक रुप से जाग्रत करने एवं सशक्त बनाने का प्रयास किया है। निश्चय ही ये प्रगतिशील कदम आगे चलकर महिला कल्याण/विकास के लिये एवं उन्हें समानता प्रदान करने की दिशा में प्रेरक तत्व का कार्य कर सकेंगे।

लोकतंत्र, मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय की संकल्पना से गहरे रुप में जुड़ा है। प्रत्येक लोकतांत्रिक व्यवस्था वाले देशों में नागरिकों को मानवाधिकार दिये जाते है क्योंकि मानवाधिकारो की उपलब्धता के अभाव में लोकतन्त्र निरर्थक हो जाता है। मानवाधिकार वे न्यूनतम अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक रुप से प्राप्त होना चाहिये क्योंकि वह मानव परिवार का सदस्य है। मानव अधिकारों की धारणा मानव गरिमा की धारणा से जुड़ी हैं अतः जो अधिकार मानव गरिमा को बनाये रखने के लिये आवश्यक है, उन्हें मानव अधिकार कहा जा सकता है। मानवाधिकारों की उपलब्धता व्यक्ति के व्यक्तित्व के बहुआयामी विकास के लिये अनिवार्य तत्व मानी जाती है।

भारत में अनुसूचित जातियों को सामाजिक न्याय उपलब्ध कराने के लिये अनेक संवैधानिक प्रावधान है जो कि मुख्यत संविधान के भाग 3 : मूल अधिकार, भाग 4 : नीति निदेशक तत्व तथा भाग 16 : कुछ वर्गो के संबंध में विशेष उपबन्ध के अंतर्गत आते है। संविधान द्वारा दिये गयो कुछ अधिकार एवं उनमें दिये गये प्रावधान केवल इनसे ही संबंधित हैं जैसे – अस्पृश्यता का अंत एवं बलात् श्रम का प्रतिषेध इत्यादि और कुछ अधिकार इन्हें भारत का नागरिक होने के नाते सभी की भांति उपलब्ध हैं जैसे– विधि के समक्ष समानता का अधिकार धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार इत्यादि। अनुसूचित जातियों को निम्नलिखित मानवाधिकार उपलब्ध है जिनके द्वारा उन्हें सामाजिक न्याय सुनिश्चित किया गया है। सभी लोग कानून के समक्ष समान होंगे, सभी को कानून का समान संरक्षण प्रान्त होगा और सभी को समान अवसर एवं स्वतंत्रता प्राप्त होगी, जाति, लिंग, धर्म और सामाजिक प्रतिष्ठा आदि के भेदभाव के बिना संविधान सभी को लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता सुनिश्चित करता है (अनुच्छेद 16), सार्वजनिक स्थलों पर प्रवेश का सभी को समान अवसर प्राप्त है। संविधान के अनुच्छेद

17 में अस्पृश्यता का पूर्णतः उन्मूलन किया गया है और किसी भी रुप मे इसके प्रचलन को एक दंडनीय अपराध घोषित किया गया है। अस्पृश्यता एक अमानवीय प्रथा है जिसने अनुसूचित जातियों को सदैव सामाजिक रुप से निम्नतम पायदान पर होन को अहसास कराकर उनमें कुंठा एवं हताशा की भावना पैदा की। इस घृणित प्रथा के आधार पर अनुसूचित जातियों को सार्वजनिक जीवन में सहभागिता से वंचित रखा जाता था। नीति निदेशक तत्वों के माध्यम से संविधान (अनुच्छेद 46) राज्य को निर्देश देता है कि वह समाज के असहाय वर्ग, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के शिक्षा एवं अर्थ संबंधी हितो की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करेगा।

आरक्षण की नीति को मौलिक अधिकारों के माध्यम से अंगीकार किया गया है क्योंकि संविधान सामाजिक न्याय की स्थापना को अपना प्रमुख उद्देश्य स्वीकार करता है। अनुच्छेद 15(4) में प्रावधान किया गया है कि राज्य सामाजिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गो के नागरिकों के विकास के लिये या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिये कोई विशेष उपबंध कर सकेगा। इसी आधार पर शैक्षिक संस्थाओं में अन्य पिछड़े वर्गो, अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों को आरक्षण दिया गया है जिसके चलते उनके सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विकास को नयी दिशा मिली है। अनुच्छेद 16 (4) में प्रावधान है कि राज्य पिछड़े वर्ग के उन लोगों के लिये, जिन्हें राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त स्थान प्राप्त नहीं है, आरक्षण की व्यवस्था करेगा।

संविधान के भाग 16 में अनुच्छेद 330 एवं 332 में क्रमशः लोकसभा एवं राज्य विधान सभाओं में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिये स्थानों के आरक्षण का प्रावधान है। इन प्रावधानों का उद्देश्य अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों को समुचित राजनीतिक प्रतिनिधित्व देना था। सकारात्मक भेदभाव की यह व्यवस्था भारतीय संदर्भ में लोकतंत्रीकरण का नेतृत्व करेगी इस पर व्यापक सहमति थी। संविधान निर्माताओं को यह आशंका थी कि यदि इन्हें स्थानों का आरक्षण नहीं दिया गया तो समाज का यह कमजोर वर्ग राजनीतिक प्रतिनिधित्व से वंचित हो सकता है क्योंकि हो सकता है कि उन्हे सामान्य सीटों पर विजय न मिल सके। इस प्रकार आरक्षण की नीति के अंतर्गत तीन क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिये स्थान आरक्षित किये गये हैं –

1. सरकारी सेवाओं में नियोजन,
2. शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश,
3. लोकसभा एवं राज्य विधान सभाओं में स्थान।

इसके अलावा संविधान के अनुच्छेद 23 मे बेगार (बलात् श्रम) का प्रतिरोध किया गया है और अनुच्छेद 24 में बाल श्रम की मनाही है। दोनो ही प्रावधान मुख्यतया इन जातियों के लिये बहुत लाभदायक है क्योंकि इन दोनों कुप्रथाओं का मुख्य संबंध इन्ही से रहा है। अनुसूचित जातियों के सामाजिक, आर्थिक एवं शारीरिक शोषण को रोकने के लये इन व्यवस्थाओं का बेहतर उपयोग किया जाना आवश्यक है। संविधान में यह भी व्यवस्था है कि प्रशासन की दक्षता बनाये रखते हुए, संघ या राज्य की सेवाओं और पदो के लिये नियुक्तियां करने मे अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के दावों को ध्यान में रखा जायेगा। अनुसूचित जाति आयोग के गठन का प्रावधान अनुच्छेद 338 में है जो अनुसूचित जातियों के मानवाधिकारो की रक्षा एवं उनसे सम्बद्ध कानूनों के कियान्वयन तथा मानवाधिकारों के हनन की शिकायतों की जांच करेगा। साथ ही इसका कार्य है कि वह इनके संरक्षण, कल्याण तथा सामाजिक –आर्थिक विकास के बारे में उपाय सुझाये।

भारत में कानूनी समानता की स्थापना के बावजूद सामाजिक भेदभाव, असमानता एवं मानवाधिकारों का उल्लघंन वास्तविकता बना हुआ है। औपचारिक रुप से अस्पृश्यता की समाप्ति एवं उसका किसी भी रुप मे प्रचलन दंडनीय अपराध घोषित होने के बावजूद भारतीय समाज से यह घृणित अमानवीय प्रथा पूरी तरह समाप्त नहीं हो पायी है। अनुसूचित जातियों के मंदिरों मे प्रवेश का प्रश्न अस्पृश्यता की समाप्ति एवं उनके साथ हो रहे सामाजिक भेदभाव के अंत से व्यापक रुप से हुआ है। मंदिर प्रवेश अनुसूचित जातियेां के सामाजिक न्याय की मांग का एक प्रमुख मुद्दा रहा है। इससे बड़ी विडम्बना और क्या होगी कि किसी को अपने भगवान की पूजा एवं दर्शन से इसलिये वंचित होना पड़े क्योंकि वह पारंपरिक तौर पर निम्न जाति का माना जाता है। सिर्फ इस बात को आधार बना कर दलितों या दूसरे भी हीन समझे जाने वाले समूहों के लोगों को मंदिर मे प्रवेश न करने देने की खबरें आती रहती हैं। जनवरी 2009 में ओडीसा के भद्रक जिले के अराडी गांव के मंदिर में राज्य की महिला एवं बाल कल्याण मंत्री प्रमिला मल्लिक जब पूजा–अर्चना करके वापस लौटी तो वहां के पुजारियों ने बकायदा उस मंदिर का शुद्धिकरण किया। यह ध्यान देने की बात है कि वहां पर दलितों को मंदिर में जाने का हक नहीं है।(जनसत्ता,19 जन 2009) और श्रीमती मल्लिक दलित समुदाय से है। यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि इस तरह की स्थितियेां में उन लोगों पर क्या गुजरती होगी जिन्हे या तो मंदिर में घुसने लायक नहीं समझा जाता या फिर उनके जाने के बाद 'शुद्धि' कर्मकांड किये जाते हैं। ओडीसा में ही केन्द्रपाड़ा सहित कई ऐसी घटनाएं सामने आ चुकी हैं, जिनमें मंदिर प्रवेश के मसले ने दलितों के खिलाफ हिंसात्मक रुख धारण कर लिया।(वही) मई 2016 में उत्तराखं डमें दलितों कोमंदिर में प्रवेश की मुहिम छेड़ने वाले लोगों को बुरी तरह से मारा–पीटा गया। यह ठीक नहीं है कि देश के विभिन्न हिस्सो से रह रहकर ऐसे सामाचार आते ही रहते है कि अमुक अमुक मंदिर में दलितों या

फिर महिलाओं का प्रवेश अभी भी वर्जित है।(दैनिक जागरण,22 मई 2016)

जून 2008 में आंध्र प्रदेश के तिरुपति के विश्व प्रसिद्ध भगवान वेंकटेश्वर मंदिर के प्रशासन ने पहली बार अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों को मंदिर में पूजा का अधिकार देने का निर्णय लिया। भारतीय संविधान नागरिकों को अन्य नागरिक अधिकारों के साथ ही धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी देता हैं अगर मंदिर में जाकर पूजा–अर्चना करने के मामले में किसी तरह का भेदभाव किया जाय तो धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार कहां रह जायेगा ?(जनसत्ता,21जून2008) स्पष्ट है कि भारतीय लोकतंत्र मे अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों को धार्मिक स्वतंत्रता के मूल अधिकार से परोक्ष रुप से ही सही, वंचित रखा गया है। यह उनके मानवाधिकारों के हनन का गंभीर मामला है। यह उनकी सामाजिक एवं मानसिक मुक्ति के मार्ग की बहुत बड़ी बाधा है। सामाजिक एवं धार्मिक भेदभाव के उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि भारतीय समाज अभी भी 'मानवमात्र की समानता' की भावना को हदय से स्वीकार नहीं कर पाया है। समानता के बिना सामाजिक न्याय की स्थापना एवं लोकतंत्र की सफलता की आशा कैसे की जा सकती है ?

अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के साक्षरता की दर देश की साक्षरता दर की तुलना में बहुत कम है जो कि क्रमशः 66.01 एवं 59 प्रतिशत है इन वर्गो में निरक्षरता का प्रमुख कारण इनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का खराब होना है। शिक्षा के क्षेत्र में दयनीय स्थिति के कारण इन वर्गो के लोग अपने मानवाधिकारों के सतत उल्लघंन का सामना कर रहे हैं। दलितों के मसीहा डॉ0 बी0आर0अम्बेडकर इस तथ्य को भली भांति जानते थे कि बिना शिक्षा के दलितों का उद्धार नहीं हो सकता और न ही उनके मानवाधिकारो की रक्षा हो सकती है इसीलिये उन्होंने दलितों की शिक्षा पर विशेष बल दिया। यद्यपि देश में शिक्षा की प्रसार हेतु अनेक प्रयास किये गये हैं परंतु फिर भी शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर दलितों की भागीदारी संतोषजनक नहीं है। उदाहरण के लिये अभी भी 80 प्रतिशत दलित छात्र माध्यमिक स्तर पर पढ़ाई छोड़ देते है। शिक्षा एवं साक्षरता दोनों ही क्षेत्रों में अनुसूचित जातियां पीछे हैं जिससे इनका विकास बहुत ही कम हो पाया है। मानवाधिकारों की रक्षा एवं उपभोग के लिये आवश्यक है कि व्यक्ति को उनका ज्ञान हो, वह आर्थिक रुप से समर्थ हो और यह ज्ञान उसे शिक्षा के बिना मिलना संभव नहीं है।

भारत में वंचित समुदायों को समाज की मुख्य धारा में लाने के लिये अनेक प्रावधान किये गये हैं। सरकारी सेवाओं मे पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने के लिये भारत में केंद्र एवं राज्य सरकार की सेवाओं में नियुक्तियेां में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियेां को आरक्षण की सुविधा प्रदान की गयी है। यह इन वर्गो के नागरिको के सामाजिक एवं आर्थिक विकास हेतु भी आवश्यक मानी जाती है। आरक्षण की व्यवस्था के उपलब्ध होने के बावजूद उच्च सेवाओं में इनकी भागीदारी असंतोषजनक एवं इनकी आबादी की तुलना में कम है। प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी की सेवाओं मे उनका प्रतिनिधित्व अधिक कम है। क्योंकि ये पद नीतियेां एवं कार्यक्रमों को प्रभावित करने वाले होते है वरन् साथ ही कुछ सवर्ण (ब्राहम्णवादी) मानसिकता वाले लोगो द्वारा यह प्रयास होता है कि इन पदो पर समाज के कमजोर वर्ग का कोई व्यक्ति न चुना जा सके। तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणीकी सेवाओ मे प्रतिनिधित्व संतोषजनक है। सफाई कर्मचारियों का आधे से अधिक भाग अनुसूचित जातियों का है(भारत,2009पृ01055) क्योंकि साफ–सफाई का कार्य पारंपरिक रुप से इन्हीं जातियों का माना जाता है और अन्य जातियां इन कार्यो को घृणा एवं तिरस्कार की दृष्टि से देखती हैं। शिक्षा जगत की सेवाओं में भी अनु0जातियों एवं अनु0 जनजातियों की भागीदारी उनको उपलब्ध आरक्षण की तुलना मे बहुत ही कम है जिससे इन वर्गो के साथ हो रहे सामाजिक अन्याय को भली–भांति समझा जा सकता है। विभिन्न आरक्षित पदों को बहाने बनाकर नहीं भरा जाता है जिससे ये पद खाली पड़े रहते हैं और इन वर्गो को नुकसान उठाना पड़ता है।

स्पष्ट है कि, उन्हें अपने अधिकारों से सामाजिक न्याय से वंचित किया जा रहा है जिससे इस वर्ग मे तीव्र असंतोष पनप रहा है। निजी क्षेत्रों मे तो अनु0जातियों एवं अनु0 जनजातियों का प्रतिनिधित्व और भी कम है। इसीलिये कुछ राजनीतिक दल जैसे लोक जनशक्ति पार्टी, इंडियन जस्टिस पार्टी इत्यादि, जो कि मुख्यतः अनु0 जातियों के समर्थन पर टिकी हैं और इनके लिये सामाजिक न्याय की मांग का समर्थन करती हैं, निजी क्षेत्र मे भी आरक्षण की मांग कर रहे हैं इन वर्गो के विकास के लिये इन्हे आरक्षण प्रदान करने के साथ ही इसके कियान्वयन पर नजर रखने के लिये विशेष निगरानी तंत्र बनाने की भी आवश्यकता है जिससे ये आरक्षण के लाभ को व्यवहार मे प्राप्त कर सकें और अपना सामाजिक–आर्थिक स्तर ऊंचा उठा सके।

अनु0 जातियों के ऊपर अत्याचार, उत्पीड़न एवं शोषण को विभिन्न रुपों मे देखा जा सकता है जिनमे जातीय संघर्ष एवं हिंसा मुख्य है। जमींदारी उन्मूलन, नरेशों के विशेषाधिकारो तथा उत्पाद के सामंतवादी साधनो की समाप्ति से तथा दलित एवं समाज के कमजोर वर्गो को विशेष सुविधाएं देने से लोकतंत्री अधिकार अधिकांश जनसंख्या को उपलब्ध हो गये हैं। परंतु उनकी उपलब्धता मुख्यतः औपचारिक ही है और बहुसंख्यक जनता के लिये इन अधिकारों का उपभोग संतोषजनक नहीं है। राजनीतिक संस्थाओं मे अभी भी उच्च–जातीय, विशिष्ट वर्गीय तथा श्रेष्ठ अमीर वर्गीय व्यक्तियों का प्रभुत्व है। वर्तमान समय मे भी इनकी दशा में अधिक परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता है। न्यायिक व्यवस्था भी आम जन को न्याय प्रदन करने मे लाचार सी दिखती है। जातीय हिंसा, मारपीट एवं गुंडागर्दी ग्रामीण क्षेत्रो में एक आम बात है, जिसका सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव अनुसूचित जातियों पर ही पड़ा है क्योंकि यह समाज का सबसे कमजोर एवं अविकसित वर्ग है। 21वीं सदी

में भी भारत में अनु0 जातियों के मानवाधिकारो की स्थिति चिंताजनक बनी हुई है। यह भारतीय लोकतंत्र की विडंबना है कि जहां इसने वयस्क मताधिकार के माध्यम से समाज के दबे–कुचले समूहों को अपनी शक्ति का अहसास कराया और उन्हें राजनीतिक सत्ता में भगीदारी का अवसर दिया, वही इनमें राजनीतिक चेतना एवं संगठन बढ़ने के साथ ऊंची जातियों द्वारा इन पर अत्याचार एवं जातीय हिंसा की घटनाओं मे भी तीव्रता आयी।

विभिन्न सामाजिक समस्याओं जैसे, अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी तथा अल्प रोजगार आदि गम्भीर समस्याओ से पीड़ित अनु0 जातियों के लोगों की आर्थिक स्थिति समाज के अन्य समूहों की तुलना में बहुत अधिक खराब है। अनु0 जाति समूह की आय, समाज के अन्य समूहों की तुलना मे बहुत कम है। इसका कारण इनकी निम्न सामाजिक स्थिति, रोजगार के अवसरों की कमी, नौकरियों मे सामाजिक भेदभाव एवं प्राचीन काल से इन्हें वंचित समूह के रुप मे रखने की परंपरा इत्यादि है। अनुसूचित जातियों के अधिकांश लोग आज भी जीवन यापन के लिये कठोर परिश्रम करते हैं। उनमें से एक बहुत बड़ी सं0 भूमिहीन मजदूरों की है। उनका अधिकांश भाग निम्न श्रेणी के कार्यो को करता है और उत्पादन के स्त्रोतों जैसे –भूमि, जंगल और पानी आदि पर उसका नियंत्रण प्रायः नही के बराबर है। भूमि सुधारो, भूस्त्रोतों के पुनर्वितरण के वैधानिक प्रयास लागू नहीं हो पाए हैं। यद्यपि कानूनी भूमि स्वामित्व इनकी कुछ आबादी को मिला है परंतु इसके बावजूद उन पर बहुत से लोगों का वास्तविक कब्जा नहीं हो सका है।

लोकतांत्रिक व्यवस्था को सशक्त बनाने के लिये सामाजिक न्याय की स्थापना महत्वपूर्ण मानी जाती है। सामाजिक न्याय की संकल्पना एक औचित्यपूर्ण समाज के निर्माण की मांग करती है जिसमें समाज के सभी सदस्यो के साथ एक समान व्यवहार होता है। भारत में वैधानिक स्तर पर महिलाओं को पुरुषों के समान एवं अनुसूचित जाति समूह के सदस्यों को सामान्य नागरिक की भांति ही समस्त अधिकार प्रदान किये गये हैं तथा इन वर्गो की स्थिति मे सुधार, उनके विकास एवं कल्याण के लिये विभिन्न कानूनों, योजनाओ एंव नीतियों का निर्माण हुआ है। इस प्रकार महिलाओं एवं अनुसूचित जातियो के सदस्यों को कानूनी तौर पर सामाजिक न्याय प्राप्त है। लैंगिक/जातीय असमानता, भेदभाव एवं अन्याय का औपचारिक रुप से उन्मूलन कर दिया गया है।

निश्चय ही स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अनेक क्षेत्रों में महिलाओं एवं अनुसूचित जातियों की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन आया है। परंतु इसके साथ ही यह कटु सत्य है कि वास्तविक जीवन में अभी भी महिलाओं एवं दलितों के प्रति व्यवहार भेदभाव पूर्ण ही है। वास्तव में, महिलाएं एवं अनुसूचित जाति समूह भारतीय समाज के वंचित, शोषित, उत्पीड़ित वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये दोनों ही वर्ग सामाजिक न्याय प्राप्त करने मे असफल रहे हैं। भारत मे आधी आबादी की दशा अच्छी नहीं होने का मूल कारण समाज, राजनीति, संस्कृति एवं अर्थव्यवस्था की समस्त मूलभूत संरचनाओं में पितृ सत्तात्मक सोच की सुदृढ़ अवस्थिति है। इसीलिये राजनैतिक एवं आर्थिक विकास की महत्वपूर्ण उपलब्धियों के बाद भी लैंगिक न्याय, लैंगिक समता एवं वास्तविक महिला अधिकार उपेक्षित ही बने हुए हैं। शासकीय प्रतिबद्धता एवं नागरिकों की जागकता ही महिलाओं को सामाजिक न्याय उपलब्ध करा सकती है। अनुसूचित जातियों के लिये भी सामाजिक न्याय प्राप्त करना कठिन बना हुआ है। सामाजिक असामनता समाज मे व्यापक रुप मे दिखाई पड़ती है। अस्पृश्यता ने दूसरे रुप ग्रहण कर लिये हैं और दलितों के लिये धार्मिक स्वतंत्रताओ का उपभोग कठिन बना हुआ है। शासकीय सेवाओं मे आरक्षण के संवैधानिक एवं कानूनी प्रावधानों के बावजूद अनु0 जातियों का उचित प्रतिनिधित्व नहीं है। दलितों की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। इनकी अधिकांश आबादी जीवन की मूलभूत सुविधाओं से वंचित है। निषकर्ष के रुप मे कहा जा सकता है कि अनु0 जाति के सदस्यों को मानवाधिकारों एवं सामाजिक न्याय की स्थिति अच्छी नहीं है। अगर भारत में लोकतंत्र को बचाये रखना एवं मजबूत बनाना है तो राज्य को समाज की समस्याओं से विशेषकर, गरीबो एवं समाज के बहिर्वेशित समूहों जैसे – महिलाओं एवं अनुसूचित जातियों की समस्याओं से सरोकार रखना पड़ेगा।

संदर्भ

कविया, मंजू,(2004):*लैगिंक समानता एवं महिला सशक्तिकरण : गांधीय दृष्टि,* अन्तर्गत कौशिक आशा (सम्पादित), नारी सशक्तिकरण : विमर्श एवं यथार्थ, जयपुर, पोइंटर पब्लिशर्स,

पूरणमल, (2002) : *दलित संघर्ष एवं सामाजिक न्याय,* जयपुर, अविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स,

राल्स,(1971): *ए थ्योरी ऑफ जस्टिस,* कैम्ब्रिज, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

कपूर, रत्ना एवं बृन्दा कॉसमन, (2001) : *ऑन वूमेन, इक्वॉलिटी एण्ड द कान्स्टीटयूशन : थ्रू द लुकिंग ग्लास ऑफ फेमिनिज्म* अंतर्गत निवेदिता मेनन (संपादित) जेन्डर एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी

भारत 2007, पृष्ठ 962

देसाई, नीरा देसाई एवं ऊषा ठक्कर,(2001): *वूमेन इन इण्डियन सोसाइटी,* दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट

कुशवाहा, मधु, (2014): *जेन्डर और शिक्षा,* वाराणसी, गंगा सरन एण्ड ग्रैण्ड सन्स,

भेदभाव के मंदिर (संपादकीय) *जनसत्ता* लखनऊ 19 जनवरी 2009

लज्जित करने वाली घटना, संपादकीय *दैनिक जागरण* वाराणसी 22 मई 2016